संत सूरदास के काव्य में मानव धर्म

नलिनाबहन डाह्याभाई आहीर
शोध छात्रा,
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात यूनिवर्सिटी - सूरत

सूर का काव्य मानवीय संवेदना से युक्त काव्य है। यह कभी बासी नहीं हो सकता, जब भी पढ़िये हमेशा नवीन एवं अनुभवगम्य सूर के कृष्ण मानवीय संवेदनाओं का गुंजन है। कृष्णदत्त पालीवाल के अनुसार आज यह प्रश्न व्यंग्य की भाषा में अक्सर पूछा जाने लगा है कि सूरदास के रचना कर्म की प्रासंगिकता क्या है? दिलचस्प बात यह है कि भक्तिकाल की प्रासंगिकता का प्रश्न प्रगति और विकास के नाम पर अधकचरे दिमाग के लोग ही ज्यादा उठाते हैं। उपभोक्तावादी विकृतियों के नशे में चूर और दिमाग के अपसंस्कृति के शिकार इन लोगों के कारण जातीय स्मृति खतरे में पड़ गयी है। सूरदास का रचना कर्म हमारी जातीय स्मृति का वह दुर्निवार हिस्सा है- जिसमें हमारी जिंदगी की लय एक लोक नायक और संस्कृति का भाव पुरुष श्री कृष्ण अपने पूरे तेज से दमक रहा है।"[१] यह सम्वेदना कचोटती है कि क्या ऐसी स्थिति जैसी भक्त कवियों के काव्य में दिखाई देती है. कल्पना जगत से इतर वास्तविक स्तर पर नहीं हो सकती ?

आधुनिकता के दौर में सूर का समाज उसकी व्यवस्था उसका प्रेम आदर्श का कार्य करता है। यह वह लोकतान्त्रिक समाज है जहाँ लोगों का जुड़ाव सिर्फ कार्य व्यापार से न होकर मानसिक होता है। डॉ. शिव प्रसाद ने सूर की प्रासंगिकता के विषय में लिखा है परंतु हम भूल जाते हैं जब-जब देश में संकट पड़ता है, तब तब जनता का प्रतिरोध उमड़ता है। यह प्रतिरोध शक्ति का केंद्र बन कर उभरता है। जहाँ के भक्त कवियों ने किसी विदेशी गया आक्रांता को अपना शासक नहीं माना बल्कि जन के तारक राधा कृष्ण के रूप में अपने महाराज-महारानी का चुनाव किया यह सूर का आयोजित विद्रोह सामंती व्यवस्था व मूल्यों के प्रति किया गया विद्रोह था।[२]

सूर प्रेम का एक नया समाज रचते हैं. यह समाज पैसे पर टिका नहीं है। यह वह समाज है जहाँ लोगों का जुड़ाव सिर्फ व्यापार से न होकर मानसिक होता है। सूर की भक्ति का अपना एक अलग लोक है जहाँ सभी को सम्मान दिया गया है। भक्त चाहे जिस जाति का हो, कुल, गोत्र, वंश, का हो, गरीब हो अमीर हो वह कृष्ण के लिए स्वीकार्य है।

"जाति-पाति कोड पूछत नाही, श्री पति के दरबार ।

सूर के काव्यलोक में समरसता आद्यांत व्याप्त है। वह सभी प्रकार के आडम्बरों जड़ताओं एवं विभेदों से मुक्त लोक है। सूर के लोक में जात-पाँत, ऊँच-नीच, स्त्री पुरुष में कोई अंतर की भावना नहीं है सबकों समानता का अधिकार प्राप्त हैं। सूर की गोपियाँ भी प्रेम करती हैं, इस प्रेम में न सड़ी गली मान्यताएं है न लोभ और न ही जातिगत श्रेष्ठता या हीनता का भाव यह उस सामंती समाज के प्रेम का विपर्यय है जहाँ सम्बन्ध स्वार्थगत होते थे। सूर के काव्यलोक में व्याप्त प्रेम के स्वरूप के संदर्भ में मैनेजर पांडेय का मत है "सूर के काव्य में प्रेम कबीर से अधिक स्वभाविक और जायसी से अधिक लौकिक है। सूर को कबीर की तरह वात्सल्य और माधुर्य की

अभिव्यक्ति के लिए बालक तथा बहुरिया बनने की आवश्यकता नहीं है और जायसी की तरह प्रेम की अलौकिक आभा दिखाने की चिंता भी नहीं। वहाँ यशोदा और गोपियों के हृदय से तादात्म्य के लिए कवि सुलभ सहृदयता का सृजनात्मक उपयोग है।[३]

सूर लोक संस्कृति के ज्ञाता है लोक व्यवहार, व्रत उपवास मान्यताएँ आस्थाएँ सब कुछ सूर के यहाँ उपलब्ध है। रीतिकालीन कविता में यह लोक विलुप्त सा हो गया। यही कारण है कि सूर की प्रासंगिकता उनके काव्यलोक की प्रासंगिकता आने वाले हर युग के लिए आदर्श प्रस्तुत करती रहेगी जब तक सृष्टि में प्रेम का कुछ भी अंश व्याप्त रहेगा । सूर उभरती हुई कल्पना, उभरते हुए जीवन सन्दर्भों के कवि थे। मध्यकालीन सामंती समाज में स्त्री की सामाजिक और मानसिक मुक्ति की कामना सर्वप्रथम हमें सूर के पुस्तक काव्यलोक में दिखाई देती है। 'भक्तिकाव्य और लोक जीवन' नामक में 'शिवकुमार मिश्र ने लिखा है "अपनी सामाजिक और मानसिक मुक्ति के लिए छटपटाती हुई नारी की कुचली हुई अस्मिता को सूर अपने प्रेम-श्रृंगार वर्णन के माध्यम से उसकी समस्त आकांक्षाओं के साथ हमारे सामने मूर्त करते हैं। यह नारी मन में छिपी प्रेम की आकुल प्यास है जिसे सूर ने पहचाना, उभारा और गहराई तक जाकर सराहा है।[४] रुगड़ मनोवृत्तियों और तरह सूर ने अपनी कविता के द्वारा अनेकानेक विसंगतियों से जूझ रही तरह एक अन्तर्वाहय द्वन्द्वों से ग्रस्त नारी को अनेक रूप चित्रों के माध्यम से उसकी आशा की किरण को जगाने का उसके नवनिर्माण का अद्‌भुत प्रयास अपनी भक्ति के माध्यम से किया।

जाति-पाँति, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष के अनाचार वाह्यचार का दमन करना समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है यह आवश्यकता न केवल तत्कालीन युग में बल्कि आज भी आवश्यक है। सूर इसलिए प्रांसगिक है, वे मूल्यों का निर्माण करते हैं, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष आस्थाओं को मजबूत कर एकता और सहिष्णुता के माहौल को बढ़ाने के लिए सूर की कविता प्रासंगिक है। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में समाज साम्प्रदायिकता की चुनौती मुँहबाये खड़ी है। अलगाववाद की समस्या और लोकतंत्र का सिकुड़न अर्थनीति और विकासनीति का ह्रास, नीतिहीनता, अनैतिकता जिसके मूल में भ्रष्टाचार की जड़ व्याप्त हैं तथा पिछड़ी एवं दलीय राजनीति के नाम पर नेताओं द्वारा वर्ग विभाजन का जो मकड़जाल बुना गया है इन सभी जालों का काट सूर के पात्रों में दिखाई पड़ता है। यह कर्म प्रधान समाज है, जहाँ गतिशीलता है, नयी मान्यताओं, स्थापनाओं का स्वीकार है। धार्मिक वितिण्डावाद के खिलाफ सूर के द्वारा गोवर्धन की पूज किसी सामन्त शाही की पूजा न होकर उस शक्ति के प्रति श्रद्धा का भाव है, जहाँ पोषण है, न्याय है, प्रेम है तथा विकास है।

"छाँड़ि देहु, सुरपति की पूजा ।
कान्हा कयौ गिरि गोवर्धन तैं और देव नहिँ दूजा |

वास्तव में आज की राजनीति में लोक और तंत्र दो भागों में बँट चुका है, पंचवर्षीय योजना की तरह। जहाँ कथित शासक पाँचवे वर्ष में अपने खोखले वादों के साथ आता है। नेताओं की महत्वाकांक्षाओं की टकराहट जनता को हाशिये पर रखकर लड़ रही है। शासकों और प्रशासकों की अक्षमता और राजनेताओं द्वारा राजनितिक लाभ के लिए विविध समूहों को एक दूसरे के खिलाफ लड़ाने की रणनीति ने आज लोगों के अंदर संवेदनहीनता को बढ़ावा दिया है और ऐसे समय में सूर का काव्यलोक वहाँ की राजनीतिक, धार्मिक व्यवस्था प्रासंगिक हो उठती है। कृष्ण पर जरा भी संकट आता है तो सारे गोकुलवासी मिलकर कृष्ण की रक्षा के लिए दान दक्षिणा करते हैं. यह लगाव है. अपने शासक के प्रति शासक भी आज जैसा नहीं है बल्कि गोकुल या ब्रज की जनता पर कोई भी संकट आ खड़ा होता है तो कृष्ण किसी की परवाह न करते हुए उस संकट से निवारण

हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। यह कहना कि सूर साहित्य में सिर्फ साहित्य में सिर्फ अतिरंजना है. सूर की कविता के समाज लोक में वह सब कुछ को देखते हुए सही नहीं लगता बल्कि सूर के काव्य है जो एक स्वस्थ लोकतान्त्रिक समाज में होना चाहिए यह वैष्णव धर्म का उत्कर्ष रूप है।

प्रश्न उठता है कि क्या सूर का काव्यलोक प्रासंगिक हो सकता है? जिस मध्यकालीन संस्कृति की दरबारी एवं भक्त विहल तस्वीर उसमें खींच गयी है, क्या वह संस्कृति आज भी अर्थवत्ता रखती हैं जिन जीवन मूल्यों और विचार दर्शनों की स्थापना साहित्य में हुई है क्या साम्प्रत्य परिवेश में वे मूल्य और दर्शन चुक नहीं पाये हैं? इसका सीधा सा जवाब यही है कि महान साहित्य कभी आप्रसंगिक नहीं हो सकता। प्रेमशंकर के शब्दों में- “यदि सूर हमारे समकालीन हैं और मध्यकालीन सामन्ती सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए, बीसवीं शताब्दी में भी हमें नयी पहचान का निमंत्रण देते हैं, तो इसके मूल में कवि का वह गहरा मानवीय सरोकार है, जो किसी भी सार्थक रचना की आधार भूमि है।"[५]

सूर का काव्य सामंतीय समाज के विरोध में खड़ा काव्य है। खासकर पारिवारिक जड़ता को तोड़ने का महत्तर कार्य उसने किया है। यहाँ हर सम्बन्ध में प्रेम की भावना हैं चाहे वह पिता पुत्र का सम्बन्ध हो, शासक या प्रजा का हो सब एक दूसरे गुम्फित है। सामंतवाद का विरोध किसी राजा की उपेक्षा मात्र से ही पूरा नहीं होता बल्कि समाज में व्याप्त उन सभी विसंगतियों से होता है जो धीरे-धीरे मानवीय आस्थाएँ मानवीय मूल्यों को मृतप्राय कर रही है। सूर का समाज जीवनोत्सव का समाज है। यहाँ गत्यात्मकता भी है और नवोत्थान भी। यदि देखना चाहे तो सूर के काव्यलोक में विद्रोह के स्वर भी है बस उसे देखने के लिए चश्मा दूसरे नंबर का पहनना पड़ेगा ।

"पंच- प्रजा अति प्रबल बली मिली, मन विधान जौ कीनौ ।
अधिकारी जम लेखा मांगे, तातै हौं आधीनौ ।
घर में गथ नहिं भजन तिहारों, जॉन दियें मैं छूटों ।
धर्म जमानत मिल्यों न चाहे ताते ठाकुर लूटा।
अहंकारी पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।
लागौ धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही।

यह केवल सूर के समाज का यथार्थ चित्रण नहीं जहाँ ठाकुर लुटेरे हैं. पटवारी झूठे हैं. अधिकारी लोग अधर्मी हैं ऐसे में जनता का क्या होगा? आज का समाज भी कुछ ऐसा ही हैं यहाँ हर छोटा व्यक्ति अपने से छोटे व्यक्ति को दबा रहा है बड़े व्यक्तियों की बात ही क्या? सुनी उसकी जा रही है जिसके पास धन है, बल है। सूर के समय की राजनीतिक स्थिति ऐसी थी जहाँ भोग विलास के पीछे जनता की बदहाली छिपी हुई है। सूर की गोपियाँ छल-कपट और राजनीति को उसी अर्थ में कहना चाहती है। लोकतान्त्रिक शासन के नाम पर छला जा रहा है, मासूम और बेबस जनता को, आज हर आंदोलन के पीछे, यह पीड़ा ही काम कर रही है, आदिवासी तबको को उनकी जमीन जायदाद से बेदखल कर बड़ी बड़ी फैक्टरियाँ बन रही हैं। किसानों की जमीन लेकर उन्हें कृषिकर्म से भी वंचित किया जा रहा है। लोकतंत्र के नाम पर दुष्यंत की एक पंक्ति हमेशा याद आती है “कहाँ तो तय था चिरागाँ हर एक घर के लिए कहाँ चिराग तक मयस्सर नहीं शहर के लिए।"[६]

यह सूर की प्रासंगिकता ही है कि सूर के यहां आबादी का आधा हिस्सा जिसके बोलने पर निषेध है, वह अपनी पूर्ण सत्ता के साथ उपस्थित होता है, राजनीति के नाम पर यह कितना तीव्र व्यंग्य है जब सूर की गोपियाँ कहती हैं-हरि हैं राजनीति पढ़िआएँ राजनीती का ऐसा सार्थक अभीप्राय सूर से पहले और बाद में भी शायद ही कहीं मिले। आज धर्म की नीति की जगह राजनीति की अराजकता व्याप्त हैं। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में भी यह अराजकता धँसी हुई है जहाँ कुचक्र है, यातना है और आवश्यकता के नाम पर यहाँ आज के भारत में आश्वासन नाम का लॉलीपॉप थमा दिया जाता है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था की नींव जो जन भावना जन कल्याण थी, आज कुछ लोगों के स्वयं के कल्याण तक सीमित हो गयी जिसका खामियाजा आज प्रजा को चुकाना पड़ रहा है। आज लोकतंत्र है, समानता है, न्याय है, पर सब कुछ नियमों में ही है। व्यवहारिक स्तर पर न तो समानता है, न न्याय और न ही बंधुत्वः जाति की छुद्रगत राजनीति ने लोकतंत्र की हत्या करवा दी है। आज किसी के भी मन में राजनीति या शासक को लेकर अच्छी छवि नहीं उभरती किन्तु सूर के शासक (कृष्ण) की लीला, उनका आदेश, लोककल्याण की भावना, आधुनिक भारत को एक सीख अवश्य देती हैं-

"स्याम गरीबनि हूँ के ग्राहक ।
दीनानाथ हमारे ठाकुर साँचे प्रीती निवाहक ।"
"नाथ अनाथनि ही के संगी।
दीनदयाल, परम करुणामय जनहित बहुरंगी ।"

सूर एक स्वस्थ आदर्श खड़ा करते हैं। अपने समाज के सामने एक ऐसे समाज का निर्माण करते हैं जो हर व्यक्ति को आत्मीय प्रतीत होता गई। उसके लिए विलास की आवश्यकता नहीं सूर के राजा कृष्ण राजा होने के पश्चात भी उस समाज के मोह से उबर नहीं सकते हैं-

“उधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
हंस सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजनि की छाँही ।
वै सुरभि वै वच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
ग्वाल बाल मिलि करत कोलाहल नाचत गहि गहि बाँही ।"

वास्तव में सूर की कविता अपने समय के समाज के पीछे चलने या उसकी आलोचना करने के स्थान पर उस सामंती समाज की व्यवस्थाओं, संस्थाओं और रूढ़ियों के दमनकारी प्रभावों का निषेध करती हुई एक ऐसे समाज की रचना करती हैं जिसमें लोक और शास्त्र के सम्बन्ध से स्वतंत्र मानवीय भावों और मानवीय सम्बन्धों का सहज स्वभाविक विकास हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ

१. भक्तिकाव्य से साक्षात्कार, कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली पहला संस्करण २००७, पृ. २०९
२. सूर सन्दर्भ और समीक्षा सम्पादक त्रिभुवन सिंह, पृ. ४९१
३. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, संस्करण १९८३, पृ. ८७
४. भक्तिकाव्य और लोक जीवन, शिवकुमार मिश्र पीपुल्स लिटरेसी दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८३, पृ. ८७
५. भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र, प्रेमशंकर, राधाकृष्ण, प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण १९९३, पृ. ८१
६. साए में धूप दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन संस्करण १९७५, पृ.१३